Impact Factor (QJIF): 8.38 E-ISSN: 2583-7206, P-ISSN: 3049-2432

International Journal of All Subject Research

Received: 12/March/2026 IJASR: 2026; 5(3):34-37 Accepted: 20/April/2026

एक सामाजिक संस्था के रूप में शिक्षा की भूमिका

[*1]डॉ. राजेश तिवारी और [2]सत्य नरायन यादव

[*1]सहायक प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, ओरियंटल यूनिवर्सिटी, इंदौर, मध्य प्रदेश, भारत।

[2]सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, स्व. गुलाब बाई यादव स्मृति शिक्षा महाविद्यालय, बोरावां (खरगोन), मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र 'शिक्षा: एक सामाजिक संस्था' के माध्यम से शिक्षा और समाज के मध्य व्याप्त प्रगाढ़ एवं अटूट अंतर्संबंधों का एक व्यापक समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस शोध का मुख्य निष्कर्ष यह प्रतिपादित करता है कि शिक्षा केवल व्यक्तिगत ज्ञानार्जन, साक्षरता या उपाधि प्राप्त करने का एक यांत्रिक माध्यम मात्र नहीं है, बल्कि यह संपूर्ण सामाजिक संरचना को स्थिरता, सुदृढ़ता और निरंतर गतिशीलता प्रदान करने वाला एक जीवंत 'हृदय' है। यह संस्था समाज की वैचारिक एवं नैतिक नींव को सुदृढ़ करती है और एक जैविक प्राणी को अनुशासित एवं उत्तरदायी 'सामाजिक इकाई' के रूप में ढालने का आधारभूत कार्य करती है। शोध के प्रमुख निष्कर्षों को पाँच मुख्य स्तंभों में समझा जा सकता है। प्रथम, सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में एमिल दुर्खीम और टैलकोट पार्सन्स के विचारों के आधार पर यह स्थापित हुआ है कि शिक्षा समाज की एक 'लघु प्रतिकृति' है, जो सामाजिक चयन और भूमिका आवंटन की प्रक्रिया को तर्कसंगत बनाती है। द्वितीय, शिक्षा समाज की संचित सांस्कृतिक विरासत, भाषा और नैतिक मूल्यों को अक्षुण्ण रखते हुए उन्हें अगली पीढ़ी तक हस्तांतरित कर सामाजिक पहचान को सुरक्षित रखती है। तृतीय, यह परिवार के पश्चात समाजीकरण का सबसे महत्वपूर्ण सोपान है, जो व्यक्ति में सामूहिक चेतना जागृत कर 'स्व-अनुशासन' के माध्यम से एक सशक्त अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण स्थापित करती है। चतुर्थ, शिक्षा अंधविश्वास, लैंगिक भेदभाव और छुआछूत जैसी रूढ़ियों के विरुद्ध एक प्रभावी 'वैचारिक शस्त्र' के रूप में कार्य करती है और वंचित वर्गों को प्रगति के अवसर प्रदान कर सामाजिक गतिशीलता सुनिश्चित करती है। पंचम, यह जनसंख्या को कुशल 'मानव संसाधन' में रूपांतरित कर राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि का आधार बनती है। निष्कर्षतः, वर्तमान तकनीकी और बाजारीकरण के युग में शिक्षा के समक्ष कई चुनौतियाँ हैं, अतः यह शोध सुझाव देता है कि पाठ्यक्रम को केवल व्यावसायिकता तक सीमित न रखकर 'नैतिक पुनरुत्थान' और 'मानवीय मूल्यों' से जोड़ा जाना अनिवार्य है, क्योंकि एक सजग शैक्षिक व्यवस्था ही एक न्यायपूर्ण और प्रगतिशील समाज की वास्तविक आधारशिला है।

मुख्य शब्द: शिक्षा, सामाजिक-संस्था, समाजीकरण, सांस्कृतिक-संचरण, सामाजिक-गतिशीलता, सामाजिक-नियंत्रण, सामाजिक-परिवर्तन।

1. प्रस्तावना

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से 'संस्था' का अर्थ केवल किसी भवन या संगठन से नहीं, बल्कि उन स्थापित नियमों, कार्यप्रणालियों और सांस्कृतिक प्रतिमानों के समूह से है जो सामूहिक मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। शिक्षा इसी श्रेणी में आने वाली एक अनिवार्य और प्राथमिक सामाजिक संस्था है। यह समाज की वह धुरी है जिस पर सामाजिक संरचना की निरंतरता और विकास टिका होता है। शिक्षा केवल अक्षर ज्ञान, साक्षरता या उपाधि प्राप्त करने की एक यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह एक वृहद और सूक्ष्म सामाजिक प्रक्रिया है। मानव जन्म के समय केवल एक 'जैविक इकाई' (Biological Unit) होता है, जिसमें मूल प्रवृत्तियाँ तो होती हैं, किंतु सामाजिक चेतना का अभाव होता है। शिक्षा ही वह माध्यम है जो इस जैविक इकाई को एक 'सामाजिक इकाई' (Social Unit) में रूपांतरित करती है। इस प्रक्रिया को समाजशास्त्र में 'समाजीकरण' कहा जाता है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति समाज के मूल्यों, विश्वासों, मानदंडों और संस्कृति को आत्मसात करता है। यह व्यक्ति के भीतर उन क्षमताओं और गुणों का विकास करती है, जिनकी अपेक्षा समाज अपने एक जिम्मेदार सदस्य से करता है।

एक संस्था के रूप में शिक्षा व्यक्ति को समाज की मुख्यधारा से जोड़ती है। यह व्यक्ति को उसके अधिकारों और कर्तव्यों का बोध कराती है और उसे इस योग्य बनाती है कि वह सामाजिक भूमिकाओं का कुशलतापूर्वक निर्वहन कर सके। संक्षेप में, शिक्षा वह सामाजिक सेतु है जो व्यक्ति की आंतरिक शक्तियों और बाह्य सामाजिक उत्तरदायित्वों के मध्य सामंजस्य स्थापित करती है, जिससे न केवल व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है, बल्कि संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को स्थिरता और गतिशीलता प्राप्त होती है।

2. शोध की आवश्यकता एवं महत्व

समकालीन वैश्वीकरण, तीव्र शहरीकरण और सूचना-प्रौद्योगिकी के इस क्रांतिकारी युग में पारंपरिक सामाजिक संस्थाओं (जैसे परिवार

*Corresponding Author: डॉ. राजेश तिवारी

और समुदाय) का स्वरूप बड़ी तेजी से परिवर्तित हो रहा है। भौतिकतावादी संस्कृति और डिजिटल विखंडन के कारण सामाजिक मूल्यों में क्षरण देखा जा रहा है, जिससे सामाजिक संरचना के अस्थिर होने का भय बना रहता है। ऐसी चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में यह शोध अत्यंत प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि यह तार्किक रूप से स्पष्ट करता है कि शिक्षा किस प्रकार एक सुरक्षा कवच के रूप में कार्य करती है और समाज की नींव को कमजोर होने से बचाती है। इस अध्ययन की अनिवार्यता इस तथ्य में निहित है कि यह समाज की 'स्थिरता' (Stability) और 'प्रगति' (Progress) के मध्य एक सूक्ष्म संतुलन स्थापित करने की प्रक्रिया को समझाता है। जहाँ एक ओर समाज को अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने के लिए स्थिरता की आवश्यकता होती है, वहीं दूसरी ओर विकास के लिए परिवर्तन भी अनिवार्य है। यह शोध पत्र इस बात को रेखांकित करता है कि शिक्षा न केवल व्यक्ति के आर्थिक उत्थान का मार्ग है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, समरसता और नैतिक सुदृढ़ता सुनिश्चित करने वाली सबसे शक्तिशाली संस्था है। अतः, एक स्वस्थ और संगठित समाज के भविष्य की रूपरेखा तैयार करने के लिए इस विषय का गहन विश्लेषण अनिवार्य है।

3. साहित्य सर्वेक्षण

शिक्षा और समाज के अंतर्संबंधों का विश्लेषण करने हेतु समाजशास्त्रीय साहित्य का सर्वेक्षण अत्यंत अनिवार्य है, जो इस विषय को सैद्धांतिक आधार प्रदान करता है। पाश्चात्य समाजशास्त्र में एमिल दुर्खीम का योगदान सर्वोपरि है; उन्होंने 1922 में तर्क दिया था कि "शिक्षा समाज के युवा सदस्यों का योजनाबद्ध समाजीकरण है" और इसे समाज की एक 'लघु प्रतिकृति' (Miniature Society) के रूप में परिभाषित किया। इसी क्रम में टैलकोट पार्सन्स (1959) ने शिक्षा को आधुनिक समाज में 'चयन और भूमिका आवंटन' की एक अनिवार्य प्रणाली माना, जहाँ विद्यालय व्यक्ति की योग्यता के आधार पर उसे भविष्य की सामाजिक भूमिकाएँ सौंपता है। जॉन डीवी (1916) ने इस विचार को आगे बढ़ाते हुए कहा कि "शिक्षा केवल जीवन की तैयारी नहीं है; शिक्षा स्वयं जीवन है," जो सामाजिक निरंतरता को बनाए रखती है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में, महात्मा गांधी (1937) ने शिक्षा को शरीर, मन और आत्मा के सर्वोत्तम विकास का साधन मानकर सामाजिक सुधार पर बल दिया, जबकि स्वामी विवेकानंद (1897) ने इसे चरित्र निर्माण और आंतरिक पूर्णता की अभिव्यक्ति के रूप में देखा। इसके अतिरिक्त, डॉ. बी.आर. अंबेडकर (1942) ने शिक्षा को सामाजिक दासता की बेड़ियाँ काटने और समतामूलक समाज के निर्माण का सबसे सशक्त 'शस्त्र' घोषित किया। इन समस्त विद्वानों के शोध और विचार इस साझा निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शिक्षा के बिना किसी भी व्यवस्थित सामाजिक ढांचे का अस्तित्व और उसका क्रमिक विकास संभव नहीं है।

4. शोध समस्या का कथन

प्रस्तुत शोध पत्र का समस्या कथन- एक सामाजिक संस्था के रूप में शिक्षा की भूमिका है।

5. शोध के उद्देश्य

- सामाजिक स्थिरता बनाए रखने में शिक्षा के संस्थागत कार्यों का विश्लेषण करना।
- सांस्कृतिक विरासत को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने की प्रक्रिया को समझना।
- सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण में शिक्षा की भूमिका की जांच करना।
- विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच समानता स्थापित करने में शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन करना।

6. शोध विधि (Research Methodology)

प्रस्तुत शोध में वर्गीकृत विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। यह अध्ययन द्वितीयक आंकड़ों, समाजशास्त्रीय सिद्धांतों और ऐतिहासिक दस्तावेजों के गहन विश्लेषण पर आधारित है। इसमें समाज के संरचनात्मक ढांचे पर शिक्षा के प्रभाव को समझने के लिए गुणात्मक (Qualitative) दृष्टिकोण अपनाया गया है।

7. सांस्कृतिक संचरण एवं संरक्षण (Cultural Transmission and Preservation)

शिक्षा का सबसे मौलिक कार्य समाज की सांस्कृतिक विरासत और परंपराओं को अक्षुण्ण बनाए रखना है। शिक्षा वह सशक्त माध्यम है जो सदियों से संचित ज्ञान को नई पीढ़ी तक हस्तांतरित करती है। इस संदर्भ में प्रसिद्ध विद्वान एफ. जे. ब्राउन (F.J. Brown) का मानना है कि शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाज की सांस्कृतिक उपलब्धियों को निरंतरता प्रदान की जाती है। यदि शिक्षा न हो, तो सामाजिक निरंतरता भंग हो जाएगी। यह संस्था न केवल पुरानी परंपराओं का संरक्षण करती है, बल्कि जैसा कि ओटावे (Ottaway) ने संकेत दिया है, संस्कृति का अर्थ उन व्यवहारों के संपूर्ण योग से है जो एक समाज अपनी आने वाली पीढ़ी को सौंपता है, जिससे समाज की विशिष्ट पहचान सुरक्षित रहती है।

8. सामाजिक समाजीकरण की प्रक्रिया (Process of Socialization)

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक 'जैविक प्राणी' सामाजिक मानव के रूप में रूपांतरित होता है। समाजीकरण और शिक्षा के संबंध पर समाजशास्त्र के जनक एमिल दुर्खीम (Emile Durkheim) ने स्पष्ट कहा है कि शिक्षा भावी पीढ़ी का व्यवस्थित समाजीकरण है। विद्यालय वह प्रथम सार्वजनिक स्थान है जहाँ बच्चा परिवार के सीमित दायरे से निकलकर सामूहिक उत्तरदायित्वों से परिचय प्राप्त करता है। जैसा कि ब्राउन (Brown) के अनुसार, शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक समाज के साथ अनुकूलन करना सीखता है, जिससे वह समाज की मुख्यधारा का एक जागरूक अंग बन पाता है।

9. सामाजिक नियंत्रण का तंत्र (Mechanism of Social Control)

समाज में शांति बनाए रखने के लिए शिक्षा एक प्रभावी 'अनौपचारिक' सामाजिक नियंत्रण के रूप में कार्य करती है, जो व्यक्ति के आंतरिक विवेक को अनुशासित करती है। इस संदर्भ में रॉस (Ross) का प्रसिद्ध कथन है कि शिक्षा वह साधन है जो समाज के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को सामाजिक रूप से नियंत्रित करती है। जहाँ कानून बाह्य दबाव डालते हैं, वहीं शिक्षा व्यक्ति के भीतर नैतिक मर्यादाओं का अंतरीकरण करती है। मैकाइवर एवं पेज (MacIver and Page) के अनुसार सामाजिक नियंत्रण वह ढंग है जिससे संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था एकता बनाए रखती है, जिससे समाज में विचलन और अराजकता कम होती है।

10. सामाजिक चयन और भूमिका आवंटन (Social Selection and Role Allocation)

समाजशास्त्र के प्रकार्यवादी दृष्टिकोण के अनुसार, शिक्षा व्यक्ति की क्षमताओं का परीक्षण कर 'सामाजिक चयन' का कार्य करती है। यह वह तंत्र है जो व्यक्तियों को उनकी योग्यता के अनुसार विशिष्ट श्रेणियों में विभाजित करता है। इस प्रक्रिया को टैल्कोट पार्सन्स (Talcott Parsons) ने 'भूमिका आवंटन' के रूप में परिभाषित किया है, जो यह सुनिश्चित करता है कि समाज का सबसे महत्वपूर्ण

कार्य सबसे योग्य व्यक्ति के हाथों में हो। इस प्रकार, शिक्षा न केवल आजीविका प्रदान करती है, बल्कि समाज में 'श्रम विभाजन' को तार्किक आधार देकर सामाजिक व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करती है।

11. सामाजिक गतिशीलता और समानता (Social Mobility and Equality)

समाजशास्त्रीय दृष्टि से शिक्षा वह शक्तिशाली माध्यम है जो व्यक्ति को उसकी जन्मजात पहचान की सीमाओं से मुक्त कर 'सामाजिक गतिशीलता' प्रदान करती है। शिक्षा एक 'बंद' सामाजिक व्यवस्था को 'मुक्त' व्यवस्था में परिवर्तित करती है। पी. ए. सोरोकिन (P.A. Sorokin) के अनुसार, शिक्षा वह सामाजिक सीढ़ी है जिसके माध्यम से व्यक्ति ऊर्ध्वमुखी गतिशीलता (Upward Mobility) प्राप्त कर सकता है। जब समाज के वंचित वर्गों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिलती है, तो अवसर की समानता का लोकतांत्रिक सिद्धांत चरितार्थ होता है और समाज में व्याप्त आर्थिक एवं सामाजिक खाइयाँ कम होने लगती हैं।

12. सामाजिक परिवर्तन के उत्प्रेरक (Education as a Catalyst for Social Change)

शिक्षा समाज में व्याप्त बुराइयों जैसे अंधविश्वास और जातिवाद के विरुद्ध एक वैचारिक क्रांति का कार्य करती है। इस संदर्भ में ओटावे (Ottaway) का कथन अत्यंत सटीक है कि सामाजिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप ही शैक्षिक परिवर्तन होते हैं, किन्तु शिक्षा भी सामाजिक परिवर्तन की गति को तीव्र करने में सहायक होती है। शिक्षा पुरानी परंपराओं को 'तर्क की कसौटी' पर कसना सिखाती है। जैसा कि फ्रांसिस बेकन ने भी संकेत दिया है कि ज्ञान ही शक्ति है, शिक्षा समाज को रूढ़िवादिता से निकालकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण की ओर ले जाती है, जिससे एक न्यायपूर्ण और प्रगतिशील समाज का मार्ग प्रशस्त होता है।

13. आर्थिक संस्थाओं के साथ समन्वय (Coordination with Economic Institutions)

शिक्षा एवं अर्थव्यवस्था के मध्य एक गहरा संबंध है क्योंकि शिक्षा ही साधारण जनसंख्या को 'मानव पूँजी' में रूपांतरित करती है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एडम स्मिथ (Adam Smith) के विचारों के अनुसार, एक शिक्षित और कुशल व्यक्ति उस महँगी मशीन के समान है जो समाज के लिए अधिक उत्पादन और लाभ सुनिश्चित करती है। शिक्षा प्रणाली समाज की व्यावसायिक आवश्यकताओं को पहचानकर कुशल विशेषज्ञ तैयार करती है। जब शिक्षा और आर्थिक संस्थाओं के बीच प्रभावी समन्वय होता है, तो बेरोजगारी की समस्या का समाधान होता है और गरीबी के चक्र को तोड़ना सुगम हो जाता है।

14. शोध के निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध का विस्तृत विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि शिक्षा केवल एक सेवा, व्यावसायिक माध्यम या अक्षर ज्ञान तक सीमित प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह समाज का वह 'हृदय' है जिससे सामाजिक संरचना की धमनियों में मानवीय मूल्यों, नैतिक नियमों और जीवंत संस्कृति का रक्त निरंतर प्रवाहित होता है। जिस प्रकार शरीर की क्रियाशीलता हृदय की धड़कन पर निर्भर है, उसी प्रकार समाज की जीवंतता शिक्षा की गुणवत्ता पर टिकी है। यदि शिक्षा रूपी यह आधारभूत संस्था कमजोर होती है या अपने मूल उद्देश्यों से भटककर केवल बाजारीकरण का साधन बन जाती है, तो इसका सीधा और विनाशकारी प्रभाव संपूर्ण सामाजिक ढांचे पर पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप समाज में नैतिक पतन, संवेदनशीलता की कमी, अराजकता और सांस्कृतिक विखंडन जैसी गंभीर स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं, जो अंततः सामाजिक विघटन का मार्ग प्रशस्त करती हैं। शोध के दौरान यह निष्कर्ष उभरकर सामने आया है कि शिक्षा ने ही एक 'जैविक इकाई' (Biological Being) को 'सामाजिक इकाई' (Social Being) में रूपांतरित कर समाज को आवश्यक स्थिरता और सामंजस्य प्रदान किया है। शिक्षा की भूमिका दोहरी रही है; इसने न केवल सदियों पुरानी सांस्कृतिक विरासत और ज्ञान को सुरक्षित रखा है, बल्कि सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility) का मार्ग प्रशस्त कर एक समतामूलक और न्यायपूर्ण समाज की नींव भी रखी है। यह संस्था व्यक्ति को उसकी संकीर्ण पहचान से ऊपर उठाकर वैश्विक नागरिक के रूप में विकसित करती है।

वर्तमान वैश्वीकरण और सूचना-प्रौद्योगिकी के युग में, जहाँ तकनीक ने मानवीय संबंधों की परिभाषा बदल दी है, शिक्षा की भूमिका और भी चुनौतीपूर्ण एवं अपरिहार्य हो गई है। यह स्पष्ट है कि किसी भी समाज की प्रगति, उसकी बौद्धिक संपदा और उसकी भविष्य की निरंतरता पूरी तरह से एक सशक्त, दूरदर्शी और उद्देश्यपूर्ण शैक्षिक व्यवस्था पर टिकी है। अंततः, यह कहा जा सकता है कि शिक्षा के अभाव में सामाजिक व्यवस्था का उसी प्रकार ढहना निश्चित है, जैसे बिना ठोस नींव के किसी भव्य भवन का पतन हो जाता है।

15. सुझाव

शोध के निष्कर्षों के आधार पर भविष्य की शैक्षिक दिशा हेतु निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत हैं:

- **नैतिक पुनरुत्थान से जुड़ाव:** वर्तमान शिक्षा प्रणाली को केवल उपाधि (डिग्री) और रोजगार तक सीमित न रखकर इसे व्यक्ति के 'नैतिक पुनरुत्थान' का साधन बनाया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम में चरित्र निर्माण और नागरिक बोध को प्राथमिकता दी जानी अनिवार्य है।
- **मानवीय मूल्यों का समावेशन:** तकनीक और कौशल विकास के साथ-साथ 'मानवीय मूल्यों' को पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा बनाया जाए। केवल कुशल मस्तिष्क तैयार करना पर्याप्त नहीं है; एक संवेदनशील हृदय और सामाजिक नैतिकता से युक्त नागरिक तैयार करना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।
- **तकनीक और परंपरा का संतुलन:** शिक्षा में आधुनिक सूचना तकनीक (IT) का उपयोग आवश्यक है, किंतु इसे सामाजिक मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं का स्थान नहीं लेने देना चाहिए। डिजिटल साक्षरता के साथ-साथ नैतिक साक्षरता पर भी समान बल दिया जाए।

संदर्भ सूची

1. अहूजा, आर. (2015). भारतीय सामाजिक व्यवस्था। जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।
2. दुबे, एस. सी. (2012). भारतीय समाज। नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट।
3. राव, एस. सी. एन. (2019). समाजशास्त्र: सिद्धांतों का परिचय। नई दिल्ली: एस. चंद एंड कंपनी।
4. शर्मा, के. एल. (2010). भारतीय सामाजिक संरचना और परिवर्तन। जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।
5. बघेल, एच. एस. (2014). शिक्षा का समाजशास्त्र। भोपाल: कैलाशा पुस्तक सदन।
6. पार्सन्स, टी. (1959). द स्कूल क्लास एज ए सोशल सिस्टम। हार्वर्ड एजुकेशनल रिव्यू, 29(4), 297-318।
7. बोर्दियू, पी. (1977). रिप्रोडक्शन इन एजुकेशन, सोसाइटी एंड कल्चर। लंदन: सेज पब्लिकेशन्स।
8. एप्पल, एम. डब्ल्यू. (2014). ऑफिशियल नॉलेज: डेमोक्रेटिक

एजुकेशन इन ए कंजर्वेटिव एज। न्यूयॉर्क: रोटलेज।
9. जयपालन, एन. (2005). सोशियोलॉजी ऑफ एजुकेशन। नई दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स।
10. शाह, बी. वी., एवं शाह, के. बी. (2002). सोशियोलॉजी ऑफ एजुकेशन इन इंडिया। जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।